कंडोलेंस विजिट

ओमा शर्मा

कंडोलेंस विजिट

वे उसे दफ्तर के गलियारे में ही मिल गए। एक तरह से अच्छा ही हुआ। कमरे में या तो उनके टेलीफोन ही इतनी आवृत्ति से बजते थे कि बातचीत में विघ्न चिड़चिड़ा डालता

https://www.hindiadda.com/condolence-visit/

था या कोई न कोई विजिटर दखल देता रहता था। वह उनके कमरे की तरफ बढ़ अवश्य रहा था, लेकिन अनुभव की आड़ में अंतर्तम में एक विकर्षण का भाव भी जाग रहा था। पहले उसने उनके घर जाकर ही बताने की सोची थी, लेकिन अपनी मनःस्थिति के भटकाव में वह टलता गया। अब थोड़ा समय भी निकल गया था। शायद अपेक्षाकृत पर्याप्त। आखिर निगम साहब उसके इतने नजदीकी परिचितों-दोस्तों में शुमार होते हैं। क्या हुआ जो इतने वरिष्ठ अफसर हैं। कभी भी अपनी हैसियत का अहसास उसके सामने नहीं होने देते हैं। विभाग के बड़े अफसरों की मतलबपरस्ती और शातिराना रवैए की जानकारी उसे खूब है, लेकिन मानना पड़ेगा भाई, अपवाद हर जगह होते हैं। आदमी को उसकी उम्र, पद या प्रतिष्ठा से अलग रखकर, महज एक इंसान के बतौर देखनेवाले चाहे विरले ही सही, होते हैं।

निगम साहब ने ही पहल की थी। देखते ही, 'अरे सोनकर भाई कैसे हो?'

भाई का तकियाकलाम इस प्रदेश में इतना ही सहज है, जैसे दिल्ली, यू.पी. में 'जी' या 'साब' का।

'ठीक हूँ सर, आपकी तरफ ही आ रहा था।' कहकर वह रुक गया, पर तुरंत ही बोला, 'कहीं जा रहे हैं, सर?'

'अरे जा रहा हूँ हजेला साहब ने अपने चैंबर में कॉफी मँगवा रखी है। दो दफा अपना पिओन भिजवा चुके हैं।' उन्होंने दो उँगलियों का संकेत देते कहा। 'कहो कैसे आना हुआ?' पीछे से बात जोड़ी।

वह क्या कहे। क्या उस खबर का इनको पता नहीं है वैसे ऐसा हो नहीं सकता। विभाग में जहाँ लोगों को एक दूसरे के कप-प्लेटों और पैंट-कमीजों की जानकारी रहती है तो...।

'यूँ ही सर... आपसे ऐसे ही मिलने आ रहा था।'

उसके अंदर से जैसे एक चीख निकल रही थी कि यूँ चलते-चलते तो वह खबर किसी को नहीं ही बतानी है। वैसे इस तरह की बातों को स्वयं बताने की जरूरत की कहाँ होती है!

'ऐसा करो, मेरे कमरे में बैठो। मैं अभी पाँच मिनट में आया।'

निगम साहब ने अपने सीधे हाथ के अँगूठे को उँगलियों से जोड़कर उसकी तरफ छौंक-सा मारते हुए कहा। एक मुस्कराहट भी बिखेरी और नाक के छोर पर उतर आए चश्मे को पकड़कर आँखों पर सटा दिया।

कुछ भी कहो, संबंधों की बुनियाद जीवन में हर जगह, हर मोड़ पर अपना असर रखती ही है। नहीं तो भला अपनी अनुपस्थिति में इतना बड़ा अफसर एक जरा से अफसर को अपना चैंबर हवाले करता है।

'नहीं-नहीं सर! मैं यहाँ बाहर ही वेट करता हूँ, आप हो आइए।' उसने शालीनता दिखाई। अपनी हैसियत का उसे अहसास रहता है। बड़ा आदमी भलमनसाहत में कुछ कहे तो ये थोड़े ही है कि उसका नाजायज फायदा उठाओ। 'तुम वहाँ बैठो तो सही, मैं अभी आया।' उन्होंने निर्णायक ढंग से कहा और आगे बढ़ गए। वह कुछ असमंजस में फँस गया। बड़े अफसरों की छोटी बातों को भी आदेशतुल्य ही लेना चाहिए, यह फलसफा उसने सर्विस ज्वॉइन करने के कुछ महीनों में सीख लिया था। निगम साब की तो बात खैर अलग है, लेकिन कौन अफसर किस बात को किस रूप में ले बैठे और पचास जगह उसकी अपनी व्याख्या करे, यह गुत्थी उसे आज तक छकाती रही है। बाहर भी वह इंतजार कर सकता था। पहले कई बार कर भी चुका था, पर आजकल इस गलियारे में जहाँ विभागीय कर्मचारियों की आवाजाही ज्यादा रहती है, वह खुद को केंद्र में रखना नहीं चाहता। माँ की मृत्यु हुई है तो क्या वह सबके सामने रोनी सूरत लेकर पेश होता रहे वैसे भी लोग उसकी संवेदना को कम, माँ की उम्र को ज्यादा तवज्जो देते हैं। पैंसठ साल सुनने के बाद पूरे वजूद से कुछ भाव काफूर होने लगते हैं।

कमरे में बैठे-बैठे उसे आधा घंटा हो गया था। पता नहीं, निगम साब कितनी कॉफी पी रहे हैं आज। तीन साल की अफसरी में वैसे उसे यही बताया गया था कि जब भी सीनियर अफसर मिलते हैं, चाय कॉफी के बहाने, तो विभाग की समस्याओं पर ही विमर्श करते हैं। जितना बड़ा पद-अफसर, उतने ही ज्यादा झंझट जान को रहते हैं। उसके सामने रखा टेलीफोन गवाह था कि साब को हर पाँच-दस मिनट में किस-किस को सुनना पड़ता है। किसी का ट्रांसफर है तो चलो साब के पास। किसी का प्रमोशन रुका पड़ा है तो पकड़ो साब को और कुछ नहीं तो कोई अपनी मौजूदा पोस्टिंग से ही खुश नहीं है और एप्रोच कर रहा है साब को अलग-अलग कोणों से। अजी साहब बड़ा झमेला है। वह तो निगम साब हैं, जो सब कुछ बखूबी चला रहे हैं, और फिर भी चेहरे पर शिकन तक नहीं। अपने से नीचेवालों से भी कितनी विनम्रता से पेश आते हैं। मुझे ही देख लो। दो साल पहले ही तो साब के साथ काम करता था, लेकिन आज तक मुझे अपना मानते आए हैं। छोटे लड़के स्नेहिल के स्कूल में दाखिले की बात हो, मैडम को

किसी डॉक्टर को दिखाना हो या ट्रेन का रिजर्वेशन, सबसे पहले सोनकर को ही याद किया जाएगा। नहीं तो काम करने के लिए दस आदमी आगे-पीछे डोलते हैं। लेकिन भरोसा भी, कोई चीज होती है।

अंदर बैठे-बैठे उसका मन कुछ उचटने लगा था। मेज पर रखी एक-दो वित्तीय पत्र-पत्रिकाओं को उसने बेमन से उलटा-पुलटा भी, पर तुरंत ही उन्हें नियत स्थान पर रख दिया। सामने टंगे कैलेंडर पर एक राजस्थानी युवती का रेखाचित्र था जो उसकी पारंपरिक वेशभूषा का नमूना भी प्रस्तुत कर रहा था। उसकी नजर जब तारीखों को टटोलने उतरी तो उसके अंदर कोई घाव फिर से रिसने लगा, आज भी तो उन्नीस तारीख है, जैसे एक महीना पहले थी, उसी दिन तो माँ ने इस संसार को अलविदा किया था।

डोर-क्लोजर की चाओं-चाओं से दरवाजा खुला तो उसका ध्यान टूटा। निगम साब ने तेज कदमों से कमरे में प्रवेश किया था।

'सॉरी सोनकर तुम्हें इंतजार करा दिया', कहते हुए वे अपनी कुर्सी के पास पहुँच गए और थोड़ा हिला-खिसकाकर बैठ गए।

'नो सर, इसमें सॉरी की क्या बात है। मैं तो आराम से बैठा था।' निगम साब के आते ही वह कुर्सी से उचककर खड़ा हो गया था। उसी अवस्था में वह बोला। निगम साब ने 'बैठो-बैठो' कहकर बिठाया।

'क्या बात है, सब खैरियत तो है', उन्होंने उसकी आँखों में झाँककर पूछा। भाई मानना पड़ेगा। आदमी को खूब जानते-पहचानते हैं। चेहरा क्या पढ़ लेते हैं!

'आपको शायद खबर लगी हो सर... मेरी माँ...' उसने दबे स्वर में कहा। चेहरे पर एक मुर्दनी सी अनायास आ बैठी थी।

'अरे हाँ हाँ, पता लगा था। कोई **10-15** रोज पहले हजेला साब ने बताया था।'

तभी उनका फोन बज उठा। रिसीवर इत्मीनान से उठाकर कान से लगाया और कुर्सी पर अपनी कमर लदकाते हुए 'हैल्यो' सरकाया। लेकिन पलभर में कुछ अतिरिक्त चौकन्नेपन के भाव में आकर कुर्सी को मेज तक खींच लाए। एक मिनट में ही उन्होंने पूरे उत्साह में आकर तीन-चार बार 'यस सर यस सर' का युगल आलाप किया। फिर फोन के मुँह को पंजे में भींचकर उसकी तरफ मुखातिब होकर बोले।

'सोनकर चाहो तो तुम जाओ, हम तुम्हारे घर कंडोलैंस विजिट करने आएँगे। पहले भी आना चाह रहे थे लेकिन...' कहकर वे फोन पर फिर तल्लीन हो गए।

वह खड़ा हो गया। ठीक बात है। सरकारी कामकाज के चलते आदमी में भावनाएँ-संवेदनाएँ असमय ही दम तोड़ देती हैं। अब निगम साहब को ही लो। उसके प्रति कितना अपनापन रखते हैं, फिर भी माँ की खबर को भूल-सा गए थे। उनकी गलती कदापि नहीं कही जा सकती है। जैसे ही उन्हें याद दिलाया, उन्होंने तुरंत पूछा था। अब इन बेवक्त टिटियाते फोनों से कोई कैसे पिंड छुड़ाए। होगा किसी ऊपर के बॉस का। दिखाना होगा उसे अपने साले के भतीजे को किसी डॉक्टर को फोकट में या कौड़ियों के मोल खरीदना होगा किसी पार्टी से फर्नीचर। वह क्या जानता नहीं है। साब के साथ जब था तो इन भांजी के मामाओं की 'अफसरी' की मार अंततः उसे ही खानी पड़ती थी। निगम साब ठहरे भले आदमी। किसी काम को 'ना' कहना सीखे ही नहीं। इसको भी राम-राम उसको भी राम-राम।

फिर भी उन्हें अहसास था। तभी तो घर आकर कण्डोल करने की बात कह रहे थे।

लेकिन उस बात को भी आज दसेक रोज तो हो ही गए। पहल करके आने का जिक्र न करते तो शायद वह इतना प्रतीक्षारत न रहता। उन्होंने कहा है तो आएँगे अवश्य। पता नहीं किस रोज आ जाएँ। जिस रोज नहीं आते, उससे अगले दिन आने की संभावना अधिक होने लगती है। फुर्सत निकालकर आएँगे, चाहे लाख काम लगे रहें। पत्नी को न कहकर उसने बाजार से खाने-पीने की हल्की-फुल्की चीजें मँगवाकर रख ली थीं। यह ठीक है कि ऐसे मौकों पर कोई खाने-पीने नहीं आता, लेकिन सीनियर अफसर अपने जूनियरों के यहाँ कौन-सा रोज-रोज आते हैं। जो होना था हो गया, जिंदगी रुकती थोड़े ही है।

जब उसकी पोस्टिंग यहाँ हुई थी, तब निगम साहब ही उसके पहले बॉस बने थे। एस.आर. निगम अर्थात् सेवाराम निगम। अंग्रेजी का संक्षिप्त नाम अधिक परिष्कृत दिखता था। सेवाराम उनके व्यक्तित्व और ओहदे पर साफ मिसफिट था। पहले दिन जब वह मिलने गया था तो प्रभावित होकर ही लौटा था। छोटा किन्तु गठीला जिस्म। साफ-सुथरा मुस्कराता चेहरा। हाँ, हँसते समय उनकी आँखें एकदम मिच जाती थीं, लेकिन फिर भी वे खुलकर हँसते थे। शाम को, उस रोज, उसने पत्नी को अनुरंजित होकर बताया था कि उसका बॉस किस तरह 'मस्त' जीव है। बॉस ने आत्मीय और अनौपचारिक होकर खूब बातें की थीं उससे। कहाँ का रहनेवाला हूँ, अभी तक कहाँ,

किस नौकरी में था, पत्नी-बच्चे कहाँ हैं, माँ-बाप कहाँ रहते हैं। पढ़ाई-लिखाई कहाँ तक की है - के साथ-साथ सब कुछ इधर-उधर का पूछ डाला था। चाय भी पिलाई थी।

उस रोज एक सामान्य से शब्द ने बरबस ही उसका ध्यान खींचा था। 'बराबर' ने जो निगम साहब के मुँह से बराबर बहे जा रहा था। वह इतिहास में एम.ए. था, 'बराबर।' वह दिल्ली का रहने वाला है 'बराबर'। वह सपरिवार शहर में आ गया है 'बराबर'। इस शब्द का इतना सार्वभौमिक प्रयोग उसे अटपटा लगा था। कुछ हँसी भी आई थी लेकिन चंद रोज में ही उसने जान लिया था कि गुजराती समाज में 'बराबर' का वही स्थान है, जो 'ठीक' या 'अच्छा' का हिंदी में। अपनी भाषा के बदलते प्रयोगों के साथ यह उसकी पहली मुठभेड़ थी।

कुछ ही रोज में वह निगम साहब का स्नेहपात्र बन गया था। एक-दो बार निगम साहब की तुनकमिजाजी, उसे अलबत्ता जरूरी अखरी। रोज सुबह निगम साहब, किसी केस को डिसकस करने के बहाने उसे बुलाने लगे थे। चाय भी साथ-साथ ही पीते थे। कभी-कभार बातों में हल्के-फुल्के ठहाके भी लग जाते थे। रीडर्स डायजेस्ट के पुराने लतीफे निगम साहब अपने वाकए बनाकर उड़ाने लगे थे।

वे समय के पाबंद थे और यही अपेक्षा रखते थे। एक रोज वे कुछ विलंब से दफ्तर पहुँचे। तब तक वह दो-तीन बार उनको याद कर चुका था। जब वह उनके कमरे में गया तो एक कुलीग और बैठे थे। उसने मिलते ही, नमस्कार के बाद, अनायास पूछा था, 'सर, आज आप देर से आए!'

निगम साहब ने क्षणभर उसे भरपूर देखा - कुछ अविश्वास से पढ़ते हुए। फिर हँसकर बोले, 'तुमने तो यार मेरा एक्सप्लेनेशन ही ले डाला।'

वह एकदम सिकुड़ गया। उसके प्रश्न की इस कोण की व्याख्या ने उसे चौंकाया, 'मेरा मतलब ऐसा नहीं था' उसने कुछ सकपकाते, ऊपर-ऊपर से मुस्कराते हुए कहा। किसी तीसरे व्यक्ति की मौजूदगी में इस तरह की परिस्थिति का उगना उसके लिए असुविधाजनक तो था ही।

'मैं तो मजाक कर रहा था,' निगम साहब ने उसे प्रकृतिस्थ करते हुए 'हैं-हैं' की। उसकी जान में जान तो आई, लेकिन अजब लगा था निगम साब का सेंस ऑफ ह्यूमर। आखिर कोई चीज मजाक है या नहीं, उसे भी इसकी चारदीवारी में रखकर पेश करने की जरूरत होती है लेकिन इस तरह की छोटी-मोटी बातों को छोड़ दो तो सब कुछ 'बराबर' ही था।

किसी फाइल को डिसकस करने के लिए उसने निगम साब को इंटरकॉम पर पूछा था, 'मैं तुम्हें पाँच मिनट में फोन करता हूँ।'

निगम साब का संक्षिप्त उत्तर था। जाहिर था किसी कार्य में व्यस्त थे, लेकिन जब आधा घंटे तक उनका कोई संदेश नहीं आया तो उसने फिर रिंग की। बड़ी देर तक घंटी बजती रही, किसी ने उठाया ही नहीं। वह कुछ अनमने ढंग से उनके कमरे की तरफ गया तो चपरासी ने बताया कि साहब तो घर चले गए हैं। कुछ अर्जेंट काम से। अभी तो घर से आए थे। ग्यारह भी नहीं बजे थे। कौन सी इमरजेंसी आ गई। वह बेमन से सोचने लगा, लेकिन कुछ ऐसा-वैसा ही हुआ होगा नहीं तो वे इस तरह पतली गली से निकलते निगम साहब के घर पर जब फोन लगाया तो वह भी निरुत्तर जाता रहा। अपने दफ्तरी काम को एक तरफ फेंककर वह उनके घर की तरफ दौड़ा। एक समझदार मातहत होने के नाते उसने निगम साहब के घर का पता तथा टेलीफोन नंबर अपनी पॉकिट डायरी में चढ़ा लिए थे, आज उनकी उपादेयता पर उसे गुनगुनी संतुष्टि हुई।

कुछ घंटे बाद जब निगम साब घर लौटे तो उन पर बदहवासी का आलम सवार था। मिसेज निगम, जिन्हें वह अक्सर अनौपचारिकतावश भाभीजी कहने की सोचता था, अपेक्षाकृत शांत थीं। आंतरिक तनाव की रेखाएँ अवश्य चेहरे पर उभर रही थीं। स्नेहिल, उनका चार साल का छोटा बेटा, जिसे निगम दंपति सोनू कहते थे, किसी पिटे हुए योद्धा की तरह क्षत-विक्षत था। उसकी सीधी टाँग पर जाँघों तक पट्टियाँ चढ़ी हुई थीं। मिसेज निगम ने बताया कि किचन में कुछ चिप्स तलने के बाद उन्होंने गर्म तेल को एक कटोरी में भर दिया था। वे एक मिनट के लिए बाथरूम गई थीं कि सोनू ने उत्सुकतावश कटोरी में हाथ मार दिया जो रसोई के स्लैब पर रखी हुई थी। वो तो शुक्र मनाओ कि मुँह या सिर पर तेल नहीं उछला, नहीं तो क्या हो सकता था। सोनकर को निगम साहब के पितृत्व की हताशा तथा लाचारी पर तथा नन्हें सोनू की अबोध कौतुकता पर मलाल हुआ। सोनू के इलाज के चलते वह निगम परिवार के काफी समीप आ गया था।

सोनू को ड्रैसिंग के लिए वह कई बार डॉक्टर के पास ले गया था। निगम साहब किसी अन्य जरूरी काम में उलझे हुए थे। मिसेज निगम उसे कई बार जबरदस्ती नाश्ता करवा देती थीं। बातों-बातों में ही जब उसे पता लगता कि निगम साहब का माइक्रोवेव खराब पड़ा है या निगम परिवार को सप्ताहांत में मुंबई जाना है तो वह सहर्ष जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ लेता। काम हो जाने पर निगम साब 'थैंक्स' कहते तो वह

'नो मेंशन' कहकर और अधिक अधिकार भाव महसूस करता। दरअसल निगम साहब की विनम्रता उसे छू जाती थी।

'सोनकर कैन यू गेट अवर रिजर्वेशन डन।' 'सोनकर, प्लीज अरेंज फॉर ए मैकेनिक' जैसे वाक्यों में प्रार्थना-भाव लबालब होता था। वे सीधे-सीधे आदेश भी दे सकते थे।

वैसे घर-बाहर के कामों में निगम साहब जितने विनम्र तथा अनौपचारिक थे, दफ्तर के कामों में उतने ही विचित्र और खड़ूस। उसके काम में कोई भी कमी दिखती तो सीधे लिखित में संप्रेषित करते थे। कभी-कभी उसे हैरत होती थी कि यही बात दो टूक शब्दों में आमने-सामने बैठकर बताई जा सकती थी।

फिर वे ऐसा क्यों करते थे इस दिक्कत का समाधान भी एक रोज निगम साहब ने कर दिया।

'सोनकर, तुम सोचते होगे कि मैं यह सब क्यूँ करता हूँ।'

वह चुप रहा। क्या कहे।

'इस विभाग में काम सीखे बिना आपको कोई घास नहीं डालनेवाला है, मैं चाहता हूँ कि तुम अच्छे ही नहीं, योग्य अफसर भी बनो। इसके लिए जब तक तुम्हारी कमजोरियों को नहीं बताया जाएगा, तब तक कुछ नहीं होनेवाला है।' उन्होंने पूरे संयत स्वर में कहा। अपनी उसी रौ में उन्होंने यह भी बताया, किस तरह उन्हीं लोगों से वे सख्ती से पेश आते हैं, जिन्हें वे पसंद करते हैं, जिन पर कुछ अधिकार समझते हैं या जिनमें उन्हें कुछ संभावनाएँ दिखती हैं।

उनके इस फलसफे पर उसे कुछ असहमति तो थी, लेकिन मूलमंत्र से एक मीठा इत्तिफाक लगा था।

साल के अंत में गोपनीय रिपोर्ट (सी.आर.) जिस पर हर नौकरशाह की नजर ललचाई रहती है, को निगम साहब ने किस तरह रेट किया यह तो उसे मालूम नहीं, लेकिन यकीन था कि 'आउटस्टैंडिंग' ही रही होगी।

हाँ, यह एक अजीबोगरीब रहस्य था कि सालाना ट्रांसफरों में उसका भी नाम शामिल था। जहाँ, उसे भेजा जा रहा था वह अलबत्ता कोई 'साइड पोस्टिंग' नहीं थी। उससे भी उसे अपनी अच्छी सी.आर. का आभास हो रहा था।

निगम साहब से अगले दिन वह मिला तो उन्होंने शरारती आँखों से पूछा था, 'क्यों भई सोनकर, तुम्हें मेरे साथ क्या तकलीफ थी जो अपना ट्रांसफर मेरे चार्ज से करा लिया।'

वह सकुचा गया।

'मैंने कहाँ कराया सर! मुझे तो पता ही नहीं चल रहा है कि मुझे क्यों, मेरा तो अभी ड्यू भी नहीं था।'

'ड्यू नहीं था तो कैसे हो गया,' उन्होंने अपना कृत्रिम आक्रामक रुख ओढ़े रखा।

'मैं क्या कह सकता हूँ सर', उसने पस्त भाव से कहा।

'खैर, अब जो हुआ, वैसे कोई बुरा भी नहीं हुआ, अलग-अलग जगह काम करने का अपना ही अलग अनुभव होता है।' उस समय उसे 'अनुभव' शब्द की व्यापकता से ताल्लुक होने लगा था। सीनियर अफसर, जो इस दिशा में प्रकाश डालते थे तो उसका निष्कर्ष यही निकलता था कि अच्छी पोस्टिंग की तरह खराब पोस्टिंग भी अलग अनुभव होती है। उसे बस यही एक पहेली लगती है कि जब अंततः किसी भी तरह की पोस्टिंग एक 'अलग अनुभव' होती है तो कुछ खास तरह की पोस्टिंग के लिए विभाग में इतनी 'मारकाट' क्यों मची रहती है

उसने नए चार्ज में ज्वॉइन कर लिया था, मगर निगम साहब की हिदायतानुसार उसे अब भी उनसे उसी तरह मिलते रहना था, जिस तरह अभी तक मिलता रहता था। जो वह करता था। शायद अब थोड़ा सचेत होकर भी। दो-तीन बार प्रतिमा को लेकर उनके घर भी गया था। यदा-कदा बेमकसद फोन भी कर लिया करता था, जिसमें या तो वह उन्हें घर आमंत्रित करता था या निगम साहब उसे और प्रतिमा को घर आने के लिए कहते। आखिर निगम साहब को यह कदापि नहीं लगना चाहिए था कि अब उनका मातहत नहीं है तो उनके काम नहीं आ सकेगा। उसके विचार से तो उसका निगम साहब के साथ संबंध और अधिक विशुद्ध हो गया था। मनुष्य के चरित्र की असली पहचान तो तभी हो सकती है न जब उसमें विनिमय का कहीं स्थान न हो।

निगम साहब को उसने कई बार लंच-डिनर पर आमंत्रित किया था, सामने जाकर। मना उन्होंने कभी नहीं किया, 'आ जाएँगे सोनकर तुम्हारे यहाँ कभी भी, क्यों हमें इतना पराया समझते हो कि औपचारिक होकर... अरे हमारा मन किया तो तुम्हें किसी रोज रात के बारह बजे भी उठाकर कह देंगे कि सोनकर उठो, बनाओ हमारे लिए कॉफी।'

निगम साहब ने सफाई दी थी। उसे लगा भी था कि कहीं-न-कहीं उनकी बातों में एक मासूम सत्य छिपा हुआ है। आखिर मुख्य चीज संबंध है, न कि आना-जाना या खाना-पीना। उसे अपने उन साथियों पर, जो अपने आकाओं को हर महीने खाने-पीने पर बुलाते थे, चाय पर बुलाकर पूरे खाने की व्यवस्था कर डालते थे (पूछे जाने पर 'कुछ भी नहीं', 'कुछ भी नहीं सर' कहकर रिरियाते थे।) कितनी जुगुप्सा हो उठती है... ये तो खरीददारी हो गई... संबंध कहाँ बचा इसमें।

जब दरवाजे की घंटी बजी तो उसको लगा था, हो न हो यह निगम साहब हों। लेकिन यह उसका नौकर (बर्तन माँजनेवाला) श्रीजी था। खैर, वह कौन-सा उनका इंतजार कर रहा था। दफ्तर से लौटने के बाद थका-माँदा पिछले दिनों की कुछ बातों को ही याद कर रहा था। माँ की मृत्यु के बाद से उसके जीवन में एक विकराल रिक्तता समा गई है। अक्सर तो माँ के साथ गुजरे कठोर संघर्षपूर्ण जीवन की ही यादों से वह घिरा रहता है। कभी किसी पुराने दोस्त या सहकर्मी से मिलता है, तब जरूर कुछ विषय बदलाव होता है। उसकी मनःस्थिति के साथ प्रतिमा की शिरकत भी सतही ही है, जो संभोग के मार्ग से स्खलित हो जाती है। कोई दूर-दराज का परिचित, माँ की मौत के कारण जब अपनी सांत्वना पेश करने आता है तब उसे अच्छा अवश्य लगता है। पता नहीं क्यों शायद इसी बहाने वह माँ को पूरा घुलकर याद कर उठता है। कैसे शुरुआत हुई रोग की, किस-किस डॉक्टर को कौन-कौन से अस्पताल में दिखाया... कि सरकारी अस्पतालों की क्या दुर्गति है कि संपूर्ण विकास के बावजूद मेडिकल साइंस कुछ बीमारियों के आगे कितनी बौनी बनी हुई है, कि सब कुछ कितना जल्दी हो गया... काश! माँ एक दो बरस और दुनिया देखती।

एक क्रम में जब दो-तीन बार दरवाजे की घंटी ने टिंग-टोंग-टिंग-टोंग की तो उसने झट से कुर्सी पर बेतरतीब लटका कुर्ता अपने ऊपर डाला और पैरों में बिना चप्पल डाले ही दरवाजे की तरफ बढ़ गया।

एक अनिर्वचनीय तोष से वह सिहर उठा। सामने निगम साहब थे। सपरिवार। स्नेहिल निगम साहब से सटा खड़ा था और बड़ी बेटी श्वेता डौर बैल के स्विच पर प्रहारों का एक और दौर शुरू करने की तैयारी में थी।

'सर, नमस्ते मैडम, सर आप' उसका मुँह अधखुला रह गया।

'क्यों भाई हम नहीं हो सकते क्या' निगम साहब ने शरारती विश्वास से कहा।

'आइए आइए!' के साथ उसने आग्रहपूर्वक अंदर की तरफ इशारा किया और सोनू को 'हलो' कहकर सायास अपने से सटाया।

'नहीं-नहीं, वो बात नहीं सर। मेरा मतलब था कोई फोन-वोन', उसकी टोन में शिकायत कम उल्लास अधिक झलकता था।

'अच्छा तो अब तुम्हारे यहाँ आने के लिए पहले फोन पर एपॉयंटमेंट लेने के दिन आ गए।' निगम साहब के स्वर में उपहास कम, स्नेह अधिक था। फिर भी वह थोड़ा झेंप गया।

'नहीं सर, वो आप यहाँ पहली बार आ रहे थे ना, इसलिए, आने में कोई दिक्कत तो नहीं हुई। घर आराम से मिल गया था।' उसने सहजता समेटकर कहा।

'अब यार डिपार्टमेंट के लोगों को भी किसी का घर ढूँढ़ने में दिक्कत हो सकती है।' कहकर वे ठठाकर हँसे। वह भी हँस पड़ा। प्रतिमा तथा मिसेज निगम भी उनकी वाक्पटुता पर गदगद थीं।

वह 'एक मिनट में आया सर' कहकर उठा और चप्पल पहन आया। प्रतिमा की तरफ 'पानी' का फरमान जारी कर दिया था। दोनों बच्चे निर्दोष निगाहों से कमरे का मुआयना कर रहे थे। मिसेज निगम अपनी बाईं एड़ी को हल्के-हल्के मसल रही थीं।

'कुछ हो गया है यहाँ मैडम', उसने पूछा।

'अरे हो क्या गया, अभी तुम्हारी सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे, तब पता नहीं कैसे कुछ नचका-सा चला गया।' निगम साहब ने बात को आई-गई करते हुए कहा।

'नचका नहीं, नस खिंच गई है।' अपनी कराहट दबाकर मिसेज निगम ने निर्वैयक्तिक भाव से स्पष्टीकरण दिया।

'आप लिफ्ट से नहीं आए?'

'अरे हमने सोचा दो मंजिल के लिए क्या लिफ्ट लें,' वे बोलीं।

'मेरे पास एक पेन-स्प्रे है। एंकल बैंड भी पड़ा होगा।' कहकर वह उठा और दोनों चीजें ले आया। प्रतिमा मिसेज निगम के पैर पर एक-एक उँगली दबाकर, 'ये है, ये है' पूछती जा रही थी, खिंची हुई नस के बारे में। पाँच मिनट में स्प्रे करने तथा बैंड बाँधने की प्रक्रिया पूरी हो गई।

'अब कुछ ठीक लग रहा है।' मिसेज निगम ने कहा तो सोनकर को अभूतपूर्व प्रसन्नता हुई।

सब लोगों ने थोड़ी देर बाद पानी पिया।

'और क्या चल रहा है तुम्हारे यहाँ?' निगम साहब ने अनायास पूछा। दरअसल यह बड़ा शाश्वत और बेमतलब सवाल था जो कभी भी किसी से बिना किसी अपेक्षा के पूछा जा सकता था।

'कुछ नहीं सर, बस शांति है', उसका जवाब उतना ही घिसा-पिटा और गुजरात से उगा हुआ था। गुजरात में हर औपचारिक सवाल का यही जवाब तकियाकलाम-सा रहता है।

'वर्क-लोड कैसा है'

'कोई खास नहीं।'

'और टाइम-बारिंग।'

'थोड़े केसिज हैं, कोई दस-बारह।'

सीधे-सीधे प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर उसके पास थे। वह जानता था कि इन प्रश्नों का कोई अन्य महत्व हो न हो, एक गुनगुनी बातचीत जैसा जरूर था। निगम साहब अब उसके बॉस नहीं थे, अतः आपसी बातचीत का आधार अधिक परिपक्व और विस्तृत था।

उसके अंदर कहीं यह विचार भी घूम रहा था कि निगम साहब माँ की मृत्यु पर अपनी सांत्वना देने आए अवश्य हैं, लेकिन धीमे-धीमे ही 'उस' तरफ आएँगे। एकदम और सीधे-सीधे माँ की असाध्य बीमारी और उपचार आदि के बारे में पूछना कुछ बनावटी और नकली लगेगा। एक समझदार व्यक्ति का यही लक्षण है। यह नहीं कि उसके कुछ परिचितों की तरह 'आई एम वैरी सॉरी, आपकी मदर के बारे में सुना,' या 'प्लीज एक्सैप्ट माय कंडोलैंसिस।' भर कह दिया और दो चार अफसोस की रेखाएँ भी चेहरे पर उकेर दीं।

दोनों बच्चे खाने की मेज की तरफ चले गए थे। किसी खेल या खिलौने की तलाश में। बिना बच्चों के घर में बच्चों के काम की चीजें तलाशना वैसा ही होता है जैसे साँप के बिल में अंडे खोजना। उसकी पत्नी को समझ नहीं आ रहा था कि बच्चों के खेल-कूद

या मन-बहलाव के लिए वह क्या जुगाड़ कर सकती है। कुछ न सूझने पर उसने सोनकर की आदिम फुटबाल ही उन्हें थमा दी।

'सोनकर तुम लोग महाराष्ट्र से नहीं हो?'

मिसेज निगम ने हमारी बातचीत की एकरसता को भाँपते हुए विषय परिवर्तन किया।

'नहीं मैडम, हम लोग तो यूपी से हैं।'

'हाँ, तुम लोगों की बातचीत से लगता तो था कि यूपी से ही होना चाहिए, लेकिन ये 'कर' वाले लोग जैसे वाडेकर, गावस्कर, मराठी होते हैं न... तो हमने सोचा आप कहीं...'

'नहीं-नहीं, हम लोग तो यूपी से ही हैं... ये आगरा की हैं और मैं खुर्जा से।'

'पहले कभी दादा-परदादा?'

'नहीं-नहीं, हमारा सब कुछ यूपी से ही है।'

मिसेज निगम ने सवालों की मासूमियत पर उसे जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ। एक-दो मर्तबा पहले भी अपने नाम को लेकर इस तरह की परिस्थितियों से उसकी मुठभेड़ हो चुकी थी। हाँ, यह जरूर था कि यह बात और लोगों ने जहाँ पहली दूसरी मुलाकात में छेड़ी थी, मिसेज निगम ने पूरे दो वर्ष के परिचय के बाद।

तभी स्नेहिल के पैरों की किक खाकर सोनकर की फुटबाल ड्राइंगरूम की ट्यूब से टकराई। क्षणभर के लिए सभी की गर्दनें उधर मुड़ीं और ट्यूब के टूटने की अपेक्षा में दबी की दबी रह गईं, लेकिन ट्यूब सुरक्षित रही। मिसेज निगम मामूली उत्तेजना में आ गईं।

'आप इन्हें सँभालिए, कुछ तोड़ताड़ देंगे,' इशारा निर्विवाद रूप से निगम साहब की तरफ था।

'अरे कुछ नहीं मैडम, कुछ नहीं होगा। बच्चे लोग खेलते ही ऐसे हैं।' सोनकर ने तसल्ली बँधाई।

निगम साहब ने कर्तव्य के बतौर 'सोनू-स्वीटी' ऊँचे स्वर में पुकारा। बच्चे अपनी शरारत पर पहले ही चौकन्ने होकर झेंप गए थे।

'क्या लेंगे सर।' उसने अपनी मेजबानी के दायित्व तले, हवा का रुख बदलने की पहल की।

'कुछ नहीं लेंगे सोनकर, कुछ नहीं। अभी-अभी हजेला साब के यहाँ खा-पीकर आ रहे हैं, कुछ जरूरत नहीं।' उनके स्वर में निर्णयात्मक सख्ती थी। अनिच्छा जाहिर थी।

'आप बताइए मैडम क्या लेंगी।' उसने मिसेज निगम की तरफ प्रार्थनापूर्वक कहा।

'बताया न, अभी-अभी हजेला साहब के यहाँ से आ रहे हैं, अभी दस मिनट भी नहीं हुए होंगे, कोई फॉर्मेल्टी थोड़े ही है।'

'आप पहली बार तो आए हैं।' यह प्रतिमा का स्वर था। इस पर निगम साहब कुछ नरम से हुए।

'अच्छा ठीक है, जो तुम चाहो पिला दो।'

'कुछ ठंडा या गरम, सर'

'कुछ भी चलेगा यार।'

'कुछ ठंडा पिलाओ,' उसने प्रतिमा की तरफ आवाज मोड़ी। कम से कम अपने अनुभव से वह यही मानता है कि इस तरह के 'कुछ भी' में ठंडा ही अधिक विद्यमान होता है।

बच्चों के मन बहलाव के लिए टी.वी. चला दिया। बच्चों की ही माँग पर उसने अपने रिमोट से दो-चार चैनल बदले और जहाँ से वे संतुष्ट से दिखे, रुक गया। 'फिल्मी चक्कर' या 'हम पाँच' जैसा कुछ प्रोग्राम आ रहा था, जिसमें बैकग्राउंड से बात-बे-बात हँसी के फव्वारे छूटे जा रहे थे।

टी.वी. पर बच्चे ही नहीं, निगम साहब और मैडम भी एकाग्र कर गए थे।

'ये जो बड़ी लड़की है ना।' मैडम ने कुछ कहना चाहा।

'कौन-सी?' निगम साहब ने पूछा।

'अरे वही जो रिया बनी है इस नाटक में।'

किसी सीरियल को नाटक का दर्जा दिए जाना उसे अटपटा लगा।

'हाँ-हाँ क्या हुआ उसे?'

'पता है किसकी लड़की है?'

'जय संतोषी माँ की।'

पता नहीं मुझे और निगम साहब को क्यों एक साथ हँसी आई। मिसेज निगम ने शायद कुछ पढ़ लिया था।

'मेरा मतलब है वह लड़की, जो बहुत पहले जय संतोषी माँ बनी थी ना, उसकी।' उन्होंने भूल सुधार की।

'जय संतोषी माँ नहीं केवल संतोषी माँ। 'जय संतोषी माँ' तो फिल्म का नाम था।' निगम साहब ने जब कहा तो मिसेज निगम पहले कुछ झेंपी, फिर खिलखिला गईं। सभी ने निगम साहब की बारीक नजर का लोहा माना।

प्रतिमा तब तक ठंडे पेय को गिलासों में भर लाई थी। सभी ने अपने-अपने गिलास उठा लिए। पत्नी ने बिस्कुट-नमकीन भी प्रस्तुत किए, जो उन्होंने थोड़ी ना-नुकुर करके स्वीकार कर लिए।

'सोनू पहले कोल्ड ड्रिंक्स खत्म करो, फिर टी.वी. देखना,' गिलास से पेय छलकने के डर से सोनू को निगम साहब ने सपाट आदेश दिया।

सफेद पेय का पहला घूँट भरते ही उसे कहीं कचोट-सी उभरी। माँ को भी लिमका काफी पसंद था, पर पीती कभी-कभार थीं। पेट में कुछ अफारा-सा बन रहा हो तभी। उस समय वह उसकी माँग भी करती थी। वैसे भी फ्रिज में अमूमन कोल्ड ड्रिंक्स नहीं ही रखे होते थे। जब जरूरत हुई, पास की दुकान से ले आए। लेकिन घूँट-घूँट करके जब माँ पीती थी, उसे वही सुकून मिलता था जो शायद माँ को कुछ सहेजकर स्वयं उसे खिलाने-पिलाने में। पिछले दिनों से मिलने-जुलने वाले जैसे अधिक हुए थे, वह पूरी क्रेट ही ले आया था, पत्नी की सलाह पर। अफसोस, इतनी सी बात माँ के जीते-जी नहीं हुई।

'यहाँ तुम्हें घरेलू काम की कोई हैल्प है?' मिसेज निगम ने प्रतिमा से आत्मीय होकर पूछा।

'हाँ, पोचा-बर्तन के लिए तो एक लड़का आता है, कुकिंग आई डू मायसेल्फ' प्रतिमा ने ऐसे कहा जैसे कोई छोटी बहन बड़ी को कहती है, सामान्य जानकारी में अधिकार-भावना का पुट लिए हुए।

'टाइम से आता-जाता है या परेशान करता है!'

'कामवाले लड़के कभी बिना तंग किए रहते हैं, हर तीसरे रोज छुट्टी मारता है, जबकि मैं इसे हर महीने ही इनके कपड़े-वपड़े देती रहती हूँ' पत्नी की अपरोक्ष शिकायत पर मिसेज निगम ने सहमति दिखाई। निगम साहब ने पेय के आखिरी घूँट को गले उतारा, पर खाली गिलास को सामने मेज पर रखने के बजाय बड़ी देर तक हाथ में दबाए रहे।

'आजकल क्लब वगैरह जा रहे हो तुम लोग।'

'नहीं सर, जब से माँ की डैथ हुई है, कहीं भी आने-जाने का नहीं बन रहा है।'

माँ का जिक्र पता नहीं क्यों उसके उत्तर में घुल गया। आजकल ऐसा वैसे काफी होने लगा था। गाहे-बगाहे माँ उसके पास टहलती आ ही जाती थी।

'ये क्लब लेकिन अच्छा है, हमारे घर से तो थोड़ा दूर पड़ता है, संडे वगैरा को ही निकल पाते हैं।' कहते-कहते वे थोड़ा रुक गए, लेकिन लग रहा था कि कुछ और भी कहना बाकी था।

'जितना घूमना-फिरना है, मौजमस्ती करनी है, कर लो मियाँ, फिर बच्चे वगैरह हो जाएँगे तो देखना जिंदगी कैसे बदल जाती है।'

निगम साहब ने एक रौ में कहा। मिसेज निगम ने स्पष्ट मूक सहमति जताई। तभी श्रीजी 'जा रहा हूँ' कहकर दरवाजे से बाहर निकल गया। निगम साहब का ध्यान दरवाजे की तरफ गया।

'अब हम लोग चलेंगे, काफी समय हो गया।'

'कहाँ सर! आप पहली बार तो आए हैं। फिर इतनी जल्दी...?'

'अब तुम लोग आओ... अच्छा प्रतिमा... अरे हाँ सोनकर, मुझे एक अच्छे ऑरथोपैडिक की जरूरत है, तुम्हारे पास तो बहुत से डॉक्टर्स होंगे, मेरे एक कजिन को स्पोंडिलाइटिस की शिकायत है।'

'कई लोग हैं सर, किसी भी वक्त, आप बता दीजिए जब जाना हो।' उसने सामान्य लहजे में कहा, जैसे उसके लिए यह बाएँ हाथ का काम हो।

'और सोनकरजी हमारी गैराज में कुछ मरम्मत का काम कराना है, किसी को...' मिसेज निगम ने अनुपूरक माँग की। निगम साहब ने समर्थन में उसकी तरफ 'हाँ यार' कहा। गिलास को मेज पर थमाकर वे उठ चुके थे। उसके 'बैठिए ना सर', को उन्होंने अनसुना कर दिया।

कुछ ही क्षणों में लिफ्ट के सहारे सब लोग नीचे उतर गए।

गाड़ी स्टार्ट होने के बाद बच्चों ने सोनकर 'अंकल' की तरफ टाटा-टाटा चिल्लाकर हाथ हिलाए। निगम साहब ने स्टेयरिंग से अपना सीधा हाथ उठाकर प्रतिमा-सोनकर की तरफ 'वेव' किया और गाड़ी को त्वरित कर दिया।